



Date: 17-08-24

Ensuring social justice in the bureaucracy

The solution lies in having a fixed tenure, irrespective of age of entry

Vivek Katju is a retired Indian Foreign Service officer.

During his parliamentary address on July 29, 2024, the Leader of the Opposition, Rahul Gandhi, regretted that there were no Scheduled Caste (SC) or Scheduled Tribe (ST) officers among the 20 who assisted in framing 2024 Budget proposals. He said that there was only one officer from the minorities and another from the Other Backward Classes (OBC) category involved in the exercise. His purpose in doing so was to highlight that those who originally belong to poor and deprived sections of society do not have a role in the framing of a crucial aspect of government's economic policy. He couched his assertions in colourful political language.

The Union Finance Minister also responded to Mr. Gandhi's charge by pointing to the absence of persons from these traditionally deprived backgrounds in the the Rajiv Gandhi Charitable Trust and the Rajiv Gandhi Foundation. A serious issue was converted into political tit for tat.

Upper caste domination continues

These political charges and counter-charges missed the real reason for the absence of SC/ST officers in the Budget-making exercise. The cause is the continuing domination of the so-called upper castes at senior levels of the civil service. This was evident from the answer by Minister of State Jitendra Singh to a parliamentary question on December 15, 2022.

This daily in a report carried the next day, quoted Mr. Singh as saying, "Out of a total of 322 officers currently holding the posts of Joint Secretaries and Secretaries under Central Staffing Scheme in different Ministries/Departments, 16, 13, 39 and 254 belong to SC, ST, Other Backward Classes (OBC) and General category, respectively."

Mr. Singh further clarified that the number of Secretary and Joint Secretary-level officers stood at 4% and 4.9%, respectively. Clearly, there is an absence of reserved category officers in sufficient numbers at policy suggestion levels in the government. Unless this situation is remedied, Rahul Gandhi displaying photographs will only remain empty political gestures, for there is no reservation for promotions in Class A services.

In order to increase the representation of SC and ST officers at the senior-most positions in government, a complete departure from the traditional concept of the age of retirement would be necessary. This writer had advocated a new approach to retirement in an article in these columns in September 2012. If the Leader of the Opposition is truly interested in ensuring social justice in the civil services, he should, at least, ponder over the ideas presented in the subsequent paragraphs.

Eligibility and age factor

General category candidates between the ages of 21 and 32 years are currently eligible to appear for the civil services examination. They are allowed six attempts in all. SC/ST candidates are permitted to take the examination till the age of 37 years and there is no restriction on their number of chances. For OBC candidates, the upper age limit is 35 years and they are allowed nine attempts. The upper age limit for Persons with Benchmark Disabilities (PwBD) is 42 years. They have unlimited chances if they are SC/ST and nine if they are from other categories.

This means that SC/ST and PwBD candidates, irrespective of how well they perform as civil servants, are unable to reach the top because they generally join late and retire before reaching the top. They have to retire at lower or middle levels. This is the obvious implication of Jitendra Singh's answer. The fact is that the civil service is a race in which those who join at a young age remain around to reach the top even if their performance is not as good as those who join later. This is simply because of the age factor. Logically, the government's focus should be on the official's efficiency and competence and not on when he/she made it to the civil services within the prescribed age limits.

If this proposition is accepted, it follows that the present retirement pattern should yield to a fixed tenure of years for every entrant to the civil service, irrespective of his age of entry within the prescribed limits. A possible fixed tenure could be 35 years.

If it is considered that persons should not be working in their seventies, then the present age limits can be lowered to ensure that all candidates would retire by the time they reach around 67 years of age. The average age of men and women is rising in India. Besides, stringent medical fitness examinations can be conducted annually after the age of 62. This age is being mentioned because even today, some officers' tenures take them to this age. Indeed, some persons who are holding responsible positions today, after their retirement from government service, are well into their seventies.

Have a committee

It is only if a fixed tenure is prescribed for all officers, irrespective of their age of entry, that SC/ST and OBC officers in larger numbers will fill the senior-most positions in government. That will contribute to a dream of Viksit Bharat, with social justice for all. As a beginning, the Leader of the Opposition should press for an independent and multi-disciplinary committee with adequate SC/ST, OBC and PwBD representation to examine this proposal with an open mind.



दैनिक भास्कर

Date: 17-08-24

ऊपरी अदालतों की चिंताओं बेफिक्र निचली अदालतें

संपादकीय

'कहीं बेल पर नो, कहीं फल से रिहाई'। जहां उच्चतम न्यायालय की कई पीठ और स्वयं सीजेआई लगातार उच्च न्यायालयों और निचली अदालतों को 'जमानत नियम है, जेल अपवाद' का न्यायालय-प्रतिपादित कानून पालन करने का कह रहे हैं, वहीं सामान्य से लेकर संगीन धाराओं में जेल में बंद हर चार में से एक कैदी विचाराधीन बंदी है। लेकिन यही अदालतें और सरकारें तब उदारवादी हो जाती हैं जब कोई असरदार व्यक्ति दुष्कर्म या हत्या के जुर्म में आजीवन कारावास की सजा कट रहा होता है। दुष्कर्मी बाबा राम रहीम अपनी उम्र कैद की सजा के पिछले सात सालों में दस बार फलों / पेरोल पर रिहा हुआ। इसका कारण था उसके रसूख के इलाके में चुनाव, जहां वह प्रभाव डालता है। एक ओर जहां बहुमत से चुने गए मुख्यमंत्री, मंत्री, सामाजिक कार्यकर्ता, डॉक्टर, छात्र नेता यूएपीए और पीएमएलए जैसे संगीन कानूनों में वर्षों - महीनों से जमानत के अभाव में जेल में बंद हैं, वहीं इनतथाकथित बाबाओं के प्रति सरकारों की उदारता सुप्रीम कोर्ट को भी चिंतित कर रही है। 'आप' नेता मनीष सिंसोदिया को रिहा करते हुए कोर्ट ने इसी चिंता का जिक्र किया। निचली अदालतों के लिए नए न्याय - शास्त्रीय व्याकरण को अंगीकार करने की जरूरत पर सीजेआई कई बार अपने भाषणों में जोर दे चुके हैं।

Date: 17-08-24

खेलों में बहुत कम से ही हम बहुत खुश क्यों हो जाते हैं?

पवन के. वर्मा (पूर्व राज्यसभा सांसद व राजनयिक)



स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले से अपने भाषण के दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पेरिस ओलिम्पिक में हमारे एथलीटों के प्रदर्शन के लिए उन्हें बधाई दी। लेकिन मैं अचरज करता हूं कि क्या खेलों में संतुष्टि की हमारी सीमा अस्वीकार्य रूप से कम नहीं है? पेरिस ओलिम्पिक में, भारत ने एक रजत और पांच कांस्य पदक जीते, लेकिन एक भी स्वर्ण नहीं जीता। 140 करोड़ से अधिक की आबादी वाले देश के लिए यह एक निराशाजनक प्रदर्शन है। इसका मतलब है लगभग 25 करोड़ लोगों पर एक पदक! पदक तालिका में हम 84 प्रतिभागी देशों में से 71वें स्थान पर रहे। अमेरिका के पास 30 स्वर्ण सहित 126 पदकों की सबसे अधिक संख्या थी। चीन 96 पदकों के साथ दूसरे स्थान

पर था, लेकिन उसके पास भी उतने ही स्वर्ण थे। विकासशील देशों में, ब्राजील ने 20 पदक जीते औरकेन्या ने 11... 1900 से, यानी जब से आधुनिक ओलिम्पिक शुरू हुए हैं- भारत ने कुल 41 पदक ही जीते हैं।

खेलों में हमारे लगातार खराब प्रदर्शन के क्या कारण हैं? सबसे पहली बात तो यह है कि मामूली सुधारों के बावजूद, हमारा खेल बुनियादी ढांचा पूरी तरह से अपर्याप्त है। 2008 तक, चीन में 3000 खेल संस्थान थे; जबकि 2024 में हमारे पास केवल 150 ही हैं। इनमें से भी केवल 26 सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्वामित्व में हैं। ओलिम्पिक के स्तर तक खेल प्रतिभाओं को निखारने के लिए बच्चों को कम उम्र में ही उच्चतम गुणवत्ता के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। हमारा पहला राष्ट्रीय खेल विश्वविद्यालय 2018 में मणिपुर के इम्फाल में स्थापित किया गया था। राष्ट्रीय खेल विकास संहिता को 2017 में अपनाया गया, लेकिन अब भी सभी खेल महासंघों ने इसका अनुपालन नहीं किया है। प्रशिक्षण की गुणवत्ता भी खराब है और नौकरशाही व लालफीताशाही से ग्रस्त है। यही कारण है कि अभिनव बिंद्रा जैसे साधन-सम्पन्न एथलीट घर पर ही प्रशिक्षण लेना पसंद करते हैं। खेल मंत्रालय को 2020 में पिछले ओलिम्पिक के बाद से 45 करोड़ रुपयों की मामूली वृद्धि मिली है। इसके विपरीत, चीन में 2023 तक देश भर में खेल स्थलों की कुल संख्या 45 लाख से अधिक हो गई थी। ये सच है कि हमारा खेलो इंडिया कार्यक्रम बढ़ा है, लेकिन इसके तहत खेल के बुनियादी ढांचे के लिए धन का आवंटन तर्क से परे है। उदाहरण के लिए, 8 करोड़ से कम आबादी वाले गुजरात को 426.13 करोड़ मिलते हैं, जबकि 13 करोड़ से अधिक लोगों वाले बिहार को मात्र 20.34 करोड़।

राजनीति और खेल का गठजोड़ भी एक समस्या है। महिला पहलवानों का यौन उत्पीड़न करने और उन्हें डराने-धमकाने के आरोपी, भाजपा के बाहुबली नेता बृजभूषण शरण सिंह भारतीय कुश्ती महासंघ को अपनी निजी जागीर समझते थे और जब कुश्ती सुपरस्टार विनेश फोगाट ने उनका विरोध किया तो उनके साथ इतना बुरा व्यवहार किया गया कि इससे उनका मनोबल टूट गया होगा। कई अन्य खेल महासंघों के अध्यक्ष भी राजनेता हैं। एनसीपी के प्रफुल्ल पटेल लगातार चार बार अखिल भारतीय फुटबॉल महासंघ के अध्यक्ष रहे हैं। टेनिस महासंघ के अध्यक्ष भाजपा सांसद अनिल जैन हैं। हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री ओपी चौटाला के बेटे अभय सिंह चौटाला लगातार तीन बार मुक्केबाजी महासंघ के अध्यक्ष रहे। असम के सीएम हिमंत बिस्वा सरमा बैडमिंटन महासंघ के अध्यक्ष हैं। भाजपा के पूर्व सांसद विजय कुमार मल्होत्रा ने तो चार दशकों तक तीरंदाजी महासंघ के अध्यक्ष रहते हुए सारे रिकॉर्ड ही तोड़ दिए। इन राजनेताओं ने हमारे खेलों के प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए क्या किया है?

क्रिकेट के प्रति हमारे जुनून ने भी अन्य खेलों की उपेक्षा की है। बीसीसीआई- जिसके महासचिव अमित शाह के बेटे जय शाह हैं- दुनिया भर में सबसे अमीर खेल लीगों में से एक है। 2023 में इसकी कमाई 18,700 करोड़ रुपए थी। इसके विपरीत, हॉकी महासंघ की 2023 में कमाई 86.7 करोड़ रुपए थी। क्रिकेट की छाया में अन्य खेलों का हमारा कौशल अवरुद्ध हो गया है। आश्चर्य नहीं कि पेरिस के 32 खेल आयोजनों में से हम केवल 16 में प्रतिस्पर्धा कर सके। जबकि चीन ने 30 में प्रतिस्पर्धा की थी। खेल-प्रतिभाओं की पहचान और पोषण के लिए हमारा कैचमेंट एरिया भी सीमित और ज्यादातर शहरी है। देश की आबादी में 2 प्रतिशत और कुल क्षेत्रफल में 1.6 प्रतिशत हिस्सेदारी रखने वाले हरियाणा ने हमारे 36 प्रतिशत पदक जीते हैं। हरियाणा को बढ़ाई, लेकिन क्या हमने अन्य राज्यों में प्रतिभाओं को खोजने के लिए पर्याप्त काम किया है?

राष्ट्रीय सहारा

Date: 17-08-24

विकास मापने का नया आधार

सुरेश भाई



जुलाई के तीसरे सप्ताह में मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी ने उत्तराखंड सकल पर्यावरण उत्पाद सूचकांक (जीईपी) लॉन्च किया। इसका सरल अर्थ है कि उत्तराखंड जैसे संवेदनशील क्षेत्र में विकास कार्य से पहले मूल्यांकन करके जल, जंगल, जमीन, वायु पर उसके प्रभाव का आकलन होगा। यदि विपरीत प्रभाव की अधिक संभावनाएं होंगी तो निश्चित ही उसको रोकना भी पड़ेगा। यही बात २००७ की केंद्रीय पुनर्वास नीति में भी लिखी गई है।

5 जून, 2021 को तत्कालीन मुख्यमंत्री तीर्थ सिंह रावत ने भी यही ऐलान किया था कि उत्तराखंड पहला राज्य होगा जहां विकास को मापने के लिए जीईपी लागू किया जाएगा। इससे पहले पूर्व मुख्यमंत्री विजय बहुगुणा और डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने भी यह आश्वासन दिया था क्योंकि उत्तराखंड हिमालय में तेजी से भोगवादी विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का विनाश हो रहा है, उसे रोकने के लिए छोटे-बड़े आंदोलन चलते रहते हैं। इसके बावजूद अब हर वर्ष सकल पर्यावरण उत्पादन में हम कहां खड़े हैं उसका मूल्यांकन करके जीडीपी के साथ जीईपी का लेखा-जोखा भी राज्य को प्रस्तुत करना पड़ेगा। यह किसी एक राज्य के लिए ही नहीं अपितु देश के लिए भी स्वागतयोग्य कदम है, लेकिन इससे एक गंभीर आशंका भी पैदा होती है। यह कि संबंधित विभागों से प्रस्तावित विकास से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के मूल्यांकन का आधार क्या होगा? क्या कोई मॉनिटरिंग प्रणाली होगी? यह भी कहा जा रहा है कि राज्य द्वारा 95,112 करोड़ के लगभग दी जाने वाली पारिस्थितिकीय सेवाएं क्या हरियाली बचाने वाले निवासियों को लाभ प्रदान करेंगी या सिर्फ केंद्र से बजट का दावा पेश किया जाएगा। नीति आयोग इस विषय पर किस आधार पर फैसला लेगा? इन सब के उत्तर भविष्य के गर्त में छिपे हैं।

वैसे भी समझने के लिए यह पर्याप्त है कि उत्तराखंड के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में से 71 प्रतिशत वन भूमि के अधीन है, जबकि सघन वन 40 प्रतिशत से अधिक नहीं है। लेकिन राज्य सरकार यही कह रही है कि जीईपी सूचकांक के आधार पर ग्रीन बोनस और केंद्र की सहायता लेने में यह लाभकारी साबित होगा। प्रति वर्ष जीईपी सूचकांक प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी उत्तराखंड के प्रमुख सचिव (वन) को दी गई है। इसका आंकलन मानवजनित और प्राकृतिक गतिविधियों के आधार पर होगा जिसमें जंगल, हवा, पानी, मृदा पर लगातार परिवर्तन जैसे-जंगल के संबंधित सूचकांक के लिए विभिन्न वर्षों में वन विभाग द्वारा रोपे गए पौधों की संख्या और इन्हीं प्रजातियों के वृक्षों के पातन की संख्या के आधार पर आंकड़े एकत्रित किए जाएंगे। इसमें यह भी पता हो पाएगा कि पातन के दौरान छोटी-छोटी वनस्पतियां, जीव-जंतु बुरी तरह प्रभावित होते हैं, लेकिन क्या हर वर्ष भीषण आग से जल रहे जंगल और रोपे गए पौधों के सापेक्ष प्राकृतिक वन संपदा की व्यावसायिक कटाई का मूल्यांकन करना आसान होगा? क्योंकि जिन पेड़ों को उसी वर्ष लगाया गया और यह

मान लेंगे कि इतने ही इसी प्रजाति के पेड़ काटे गए तो यह अधूरी जानकारी होगी क्योंकि उत्तराखंड में हर साल चीड़, देवदार, कैल आदि प्रजातियों का बड़े पैमाने पर कटान हो रहा है।

मृदा के बारे में संभव है कि बड़े निर्माण कार्यों से बेतरतीब ढंग से काटे जा रहे पहाड़ों से खिसक रही मिट्टी को सीधे नदियों में डाला जाता हो और कहीं भी मिट्टी को पुनः उपयोग में लाने के लिए डंपिंग जोन नहीं है जिसके ऊपर पौधे रोपे जा सकते थे। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक मिट्टी की बर्बादी का मूल्यांकन संभव नहीं। जल के मामले में उपलब्ध जल की गुणवत्ता और मात्रा में तेजी से बढ़ रहे प्रभाव का सबसे जीता जागता उदाहरण तो यही है कि पहाड़ी भू-भाग में भी 60 प्रतिशत जल स्रोत सूख चुके हैं, जिसके एवज में जो भी जल संरचनाएं बनी हैं, क्या उन्हें प्राकृतिक जल स्रोतों के समान स्वीकार किया जा सकता है? और कोई भी विकास संरचना यदि जल स्रोतों को बर्बाद करती है तो उसे न्यूनतम करने के क्या तरीके होंगे। जंगल के बारे में भी कहा जा सकता है कि विकास के नाम पर न्यूनतम वनों को ही नुकसान हो।

भौगोलिक संरचना के आधार पर विकास की संरचना निर्धारित हो। भारी-भरकम परियोजनाओं से हिमालय के प्राकृतिक संसाधनों का विनाश नहीं रोक पाएंगे तो जीईपी की हालत जीडीपी जैसी होगी। सकल पर्यावरण उत्पाद की मांग करने वाले पदमभूषण डॉ. अनिल प्रकाश जोशी मानते हैं कि उत्तराखंड में .9 प्रतिशत जीईपी है, जिसे 4-5 तक ले जाना पड़ेगा। लेकिन राज्य व्यवस्था तो फंड के लिए मजबूत हथियार के रूप में इसे देख रही है जबकि ग्रीन बोनस की मांग करने वाले पर्यावरणविद् जगत सिंह 'जंगली' और रक्षा सूत्र आंदोलन की टीम का कहना है कि रसोई गैस पर लोगों को आधी से अधिक सब्सिडी दी जानी चाहिए। जल पुरुष राजेंद्र सिंह कहते हैं कि पर्यावरणीय आर्थिकी वहां होगी जहां लोग अहिंसक होंगे।
